**ओ३म्**

**‘जन्म व मृत्यु ईश्वरीय सृष्टि के अटल नियम’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आज संसार में लगभग 7 अरब व उससे भी अधिक मनुष्य हैं। प्रत्येक क्षण सैकड़ों लोग संसार में मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं और जितने मरते हैं उससे कहीं अधिक जन्म भी लेते हैं। जन्म का परिणाम मृत्यु होता है और मृत्यु का परिणाम जन्म होना निश्चित है। जन्म होने पर जड़ व भौतिक पदार्थों से बना शरीर प्राप्त होता है परन्तु इसमें एक चेतन तत्व जीवात्मा विद्यमान है जो कि अभौतिक व अविनाशी पदार्थ है। वृद्धावस्था एवं अन्य कुछ अवस्थाओं में इससे पूर्व भी मृत्यु होने पर यह जीवात्मा शरीर से निकल कर आकाश व वायु में चला जाता है व उसमें रहता है। कोई भी मनुष्य अनेकानेक विपरीत परिस्थितियों में मरना नहीं चाहता। मृत्यु के समय संसार की एक अदृश्य सत्ता व शक्ति उसे बलपूर्वक शरीर से निकालती है। उसे तो ईसाई हो या इस्लाम, हिन्दू हों या यहूदी, पारसी, बौद्ध, जैन व सिख आदि सभी को स्वीकार करना ही पड़ता है। शरीर से आत्मा को पृथक कर संसार में मनुष्य व अन्य योनियों में जो नये बच्चे जन्म लेते हैं, उनमें उन आत्माओं को जन्म देने वाली शक्ति का नाम ही ईश्वर है। ईश्वर व जीवात्मा के अन्य भाषाओं में पृथक-पृथक नाम हैं व हो सकते हैं। इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। ईश्वर और उसकी सृष्टि का बहुत अनोखा नियम है कि किसी भी मनुष्य को यह पता नहीं होता कि उसका कितना जीवन शेष है अर्थात् उसकी मृत्यु कब होनी है। इसकी मीमांसा करने पर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यदि किसी मनुष्य को अपनी मृत्यु की तिथि व समय ज्ञात होता तो उसका जीवन दूभर हो जाता। वह मृत्यु की चिन्ता में ही डूबा रहता और संसार में वह मृत्यु को भुलाकर या उसे भूल कर जो शुभ-अशुभ व पुण्य-पाप कर्म करता है, वह न कर पाता। हमने देखा है कि जब भी किसी मनुष्य पर कोई रोग या मुसीबत आती है तो वह उसके भावी परिणामों की चिन्ता करने लगता है जिसमें मृत्यु का दुःख व पीड़ा भी होती है। जब वह मृत्यु को भुला रहता है तो किंचित सुखी रहता है और जब उसे वहयाद आ जाती है तो उसका चित्त खिन्नता व क्षोभ से भर जाता है। यह भी आश्चर्य है कि हम सब मनुष्यों की एक न एक दिन मृत्यु अवश्य होनी है फिर भी सभी मनुष्य मृत्यु को जानने व उससे बचने तथा मृत्यु के दुःख पर विजय पाने का प्रयास नहीं करते।

 मृत्यु का कारण शरीर की नश्वरता है। सृष्टि का यह नियम है कि जिस पदार्थ की उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी अवश्य ही होता है। संसार में हम जिस भी चीज को बनाते हैं, बनने व तैयार होने के साथ उल्टी गिनती आरम्भ हो जाती है। सरकारी नियमों के अनुसार तो भोजन व दवाओं पर **‘एक्सपायरी डेट’ व ‘बैस्ट यूज बिफोर’** भी अंकित करने का प्रचलन है। यह इसी नियम के अनुसार है कि बनने वाली प्रत्येक वस्तु समय के साथ पुरानी होकर नाश व विकार को प्राप्त होती है। ऐसा ही मनुष्य शरीर है जो कि भौतिक पदार्थों से बना है, विनाशी है और इसमें ईश्वरीय व ईश्वर के बनाये प्राकृतिक नियमों के अनुसार उत्पत्ति, वृद्धि, स्थिरता व ह्रास की अवस्थायें आकर इसका एक दिन विनाश होना अवश्यम्भावी है। संसार के सभी महापुरुष, अवतार नामधारी पुरुष, ईश्वर के पुत्र व सन्देश वाहक किंवा ऋषि, मुनि, सज्जन व दुर्जन कोई इस नियम से बचे नहीं हैं। मृत्यु की निश्चितता और उसके बाद जन्म होने के कारण ही साक्षात्कर्मा ऋषियों ने वेदों के आधार पर यह विधान किया है कि मनुष्य को शुभ कर्म करने चाहिये, अशुभ कर्म कदापि किसी को करना उचित नहीं। अशुभ कर्मों का फल इस जन्म में भी दुःख होता है और परजन्म में योनि परिर्वतन होकर इस जन्म में भोगे सुखों की तुलना से भी कहीं अधिक दुःखदायी होता है। इस सत्य सिद्धान्त को अज्ञान व अविद्या के कारण न मानने वाले मनुष्य भी इन नियमों से बच नहीं पाते और अन्धे मनुष्य के कुवें में गिरने के समान दुःख के सागर में डूबते व दुःखी होते हैं। आग में हाथ डालने पर हाथ जलेगा, पीड़़ा होगी, अतः कोई भी अपना हाथ जानबूझकर आग में नहीं डालता परन्तु पाप कर्मों का परिणाम आग की तरह मनुष्य को जलायेगा, इस ज्ञान व विद्या के अभाव में मनुष्य स्वार्थ, राग, द्वेष व मोह आदि दुर्गुणों में फंस कर दुःखदायी कामों को करके इच्छापूर्ति होने पर खुश होते हैं। समाज में जो मनुष्य अभावग्रस्त होते हैं वह भी पदार्थों की उपलब्धता से कम परन्तु अपने अज्ञान व अविद्या के कारण अधिक दुःखी होते हैं। अतः आवश्यकता है कि स्कूली लाभकारी शिक्षा व विज्ञान की भांति संसार में कर्म-फल सिद्धान्तों पर सभी मतों के विद्वानों को एक मत व एक राय वाला होना चाहिये और इसका पाठ संसार के सभी स्कूल व कालेजों में एक समान रूप से पढ़ाया जाना चाहिये जिससे संसार में पाप कर्म कम होकर सुखों में वृद्धि हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के सभी सुखों का त्याग कर सत्य वैदिक नियमों वा धर्म का प्रचार व प्रसार किया था। लोगों ने उनके प्रचार पर कान नहीं धरे और मताचार्यों ने अपने स्वार्थों को आगे रखा, जिसका परिणाम आज की स्थिति है। यह स्थिति शीघ्रातिशीघ्र बदलनी चाहिये अन्यथा इससे हानि समस्त मानवजाति की ही होनी है।

जब अपने परिवार व अन्य किसी प्रिय व्यक्ति की मृत्यु होती तो मनुष्य के मन में वैराग्य भाव उत्पन्न होते हैं। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि कभी पूर्वजन्मों में हम भी इसी प्रकार से मृत्यु को प्राप्त हुए हैं व हमारे पूर्व पूर्वजन्मों में अनेक प्रिय सम्बन्धी भी इसी प्रकार मृत्यु को प्राप्त होते रहे जिनके संस्कार हमारे चित्त पर अंकित हैं। इन्हीं संस्कारों के प्रभाव से वैराग्य की भावना हमें मृत्यु के भय से बचने के लिए सावधान करती है। ऋषि दयानन्द ने भी कुमारावस्था में जब अपनी बहिन व चाचा की मृत्यु देखी व इससे लगभग दो हजार वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध जी ने वृद्ध, रोगी और मृतक की घटनायें देखीं, तो वह भी भय व वैराग्य को प्राप्त हुए थे। इन घटनाओं से इन महापुरुषों ने शिक्षा लेकर अपने जीवन की दिशा व दशा बदल दी थी। हम व अन्य सांसारिक लोगों के चित्त पर अविद्या के संस्कार इतने प्रगाढ़ हैं कि हम ऐसे विषयों पर विचार ही नहीं करते। इसके पीछे यह भी कारण है कि संसार के सभी लोग किसी न किसी मत के अनुयायी होते हैं। वहां उनके जो मताचार्य हैं, वह ईश्वर, जीवात्मा, जन्म-मृत्यु व पाप-पुण्य को लेकर मिथ्या मान्यताओं व अविद्या से गहराई से ग्रसित हैं। उनके स्वार्थ भी सत्य को स्वीकार करने में बाधक हैं। एक बात यह भी है कि संसार में परा व अपरा दो विद्यायें हैं। हमारे सभी मनुष्य व वैज्ञानिक अपरा विद्या के अधिकारी विद्वान हैं परन्तु वह परा विद्या के ज्ञान से सर्वथा शून्य हैं। जिस प्रकार एक इंजीनियर किसी गम्भीर रूग्ण व्यक्ति की चिकित्सा नहीं कर सकता और एक डाक्टर एक इंजीनियर के काम नहीं कर सकता, इसी प्रकार एक अपरा विद्या का विद्वान परा विद्या अर्थात् आत्मा व परमात्मा के ज्ञान के बारे में नहीं जान सकता व बता सकता। इसके लिए उसे परा विद्या की योग्य गुरुओं से शिक्षा लेनी होगी, अध्ययन करने के साथ चिन्तन व मनन भी करना होगा तभी वह आध्यात्मिक विषयों को समझ व जान सकता है। जन्म व मृत्यु का विषय भी कुछ परा व कुछ अपरा विद्या दोनों से युक्त है। शरीर भौतिक पदार्थों से ईश्वर के विधान के अनुसार उत्पन्न होता है परन्तु जीवात्मा अभौतिक होने के कारण उत्पन्न नहीं होती अपितु यह मनुष्य व अन्य प्राणियों के शरीरों से निकल कर ही दूसरे शरीरों में आती व जाती है। परा विद्या का अध्येता इस तथ्य व रहस्य को भली भांति जानता है परन्तु भौतिकविद् और मत-मतान्तरों के पूर्वाग्रहों से ग्रसित विद्वान अपनी अविद्या व स्वार्थों को छोड़े बिना इसे नहीं जान सकते।

महर्षि दयानन्द परा व आध्यात्म विद्या के मर्मज्ञ एवं पारद्रष्टा विद्वान थे। उन्होंने ईश्वर का स्वरूप वर्णन करते हुए लिखा है कि **‘ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।’** इससे पूर्व उन्होंने आर्यसमाज के नियमों में एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य यह बताया गया है कि सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है। इसके अतिरिक्त ईश्वर इस संसार का पालन कर्ता व प्रलयकर्ता है। वह सभी जीवात्माओं के जन्म-जन्मान्तरों के कर्मो के फल, क्रियमाण, संचित व प्रारब्ध के अनुसार फल वा भोग के अनुसार उन्हें मनुष्यादि भिन्न भिन्न योनियों में जन्म देता हैं। जन्म लेने वाली सभी जीवों की कालान्तर में मृत्यु होती है। जीवों के सुख व कल्याण के लिए ही उसने इस संसार या ब्रह्माण्ड की रचना की है। हम नहीं समझते कि संसार का कोई व्यक्ति ईश्वर विषयक इस मान्यता व सिद्धान्त का प्रतिवाद कर सकता हो परन्तु यह भी तथ्य है कि संसार के सभी लोग इसे सिद्धान्ततः स्वीकार नहीं करते। हमारी आत्मा का स्वरूप भी वैदिक मान्यताओं के अनुसार ‘सत्य, चेतन, एक देशी, जन्म-मरण धर्मा, ससीम, अनादि, अनुत्पन्न, अजर, अमर, नित्य, कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र आदि है। मनुष्य रूपी जन्म पाने पर अपने पूर्व कर्मों भोग करते हुए ईश्वर व जीवात्मा के स्वरूप जानकर तथा ईश्वरोपासना व विद्याध्ययन कर मोक्ष की प्राप्ति करना ही प्रत्येक जीवात्मा का अन्तिम उद्देश्य है। जब तक जीवात्मा मोक्ष प्राप्त नहीं करेगा, आत्मा कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में भ्रमण करता रहेगा और सुख-दुःख भोगता रहेगा। जीवन जीने का सही मार्ग उपनिषदों, दर्शन और वेद आदि ग्रन्थों सहित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि को पढ़कर भी जाना जा सकता है। इससे अन्य कोई मार्ग संसार में नहीं है। केवल मात्र धनोपार्जन कर भौतिक सुखों की प्राप्ति जीवन का उद्देश्य नहीं है। जीवन में आध्यात्म व भौतिक सुख का सन्तुलन रखना आवश्यक है। आजीविका के सभी साधनों का पूर्ण पवित्र होने के साथ वेद विद्या के शिक्षण, प्रचार-प्रसार आदि में दान आदि से सहयोग देना भी आवश्यक है। स्वाध्याय एक ऐसा गुण है जिससे मनुष्य जीवन में सही मार्गदर्शन और सुख प्राप्त करता है। न केवल अपना अपितु औरों का भी गार्ग दर्शन कर सकता है। वैदिक साहित्य के अध्ययन व स्वाध्याय से रहित जीवन एकांगी, किंचित दोषपूर्ण एवं परिणाम में हानिकर होता व हो सकता है। अतः जीवन को सही प्रकार से व्यतीत करने के लिए विवेक ज्ञान का होना परमावश्यक है जो स्वाध्याय और ईश्वरोपासना आदि कार्यों से ही प्राप्त होता है।

लेख को विराम देने से पूर्व हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि कालान्तर में हम सबकी मृत्यु होगी, यह कटु सत्य है। इसे हमें भुलाना नहीं है अपितु इसके उपाय के लिए सत्यार्थप्रकाश आदि सद्ग्रन्थों का नित्य बारम्बार स्वाध्याय व अध्ययन कर प्रत्येक विषय में दक्षता प्राप्त करनी है। ऐसा करने से हमारे इस जन्म व परजन्म का सुधार व उन्नति होगी। ईश्वर को जानने व उपासना से हम साधारण लोगों की तुलना में मृत्यु के भय व दुःख से कुछ व अधिक दूर होकर बच सकते हैं। मृत्यु किसी की किसी भी समय हो सकती है, इसे जानकर अपने सभी आवश्यक कामों को शीघ्रता से पूरा करना चाहिये। यदि कोई छूट गया तो फिर उसे पूरा करने अवसर मिलेगा या नहीं, यह इ ईश्वर पर निर्भर है।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘वयोवृद्ध ऋषिभक्त और आर्य साहित्य को समृद्ध करने**

**वाले डा. भवानीलाल भारतीय को सश्रद्ध प्रणाम्’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्यजाति का सौभाग्य है कि डा. भवानीलाल भारतीय जी जैसे तपस्वी ऋषिभक्त विद्वान उसके पास है जिन्होंने अपना सारा जीवन ऋषि दयानन्द के जीवन, विचारधारा, सिद्धान्तों व कार्यों के अध्ययन, अनुसंधान, उनके लेखन और व्याख्यानों द्वारा प्रचार में लगाया है। हमारा सौभाग्य है कि सन् 1970 में आर्यसमाज के सम्पर्क में आने के बाद ही हम उनके लेखों व पुस्तकों के अध्ययन से जुड़ गये थे। उनसे हमारा अनेक विषयों पर पत्रव्यवहार भी होता रहा जो एक अनमोल पूंजी के रूप में हमारे पास है। यदा-कदा हम उन्हें स्मरण करते रहते हैं। उनका रचित प्रभूत साहित्य हमारे पास है जिसका हम अपने अध्ययन व लेखन आदि में उपयोग करते रहते हैं। कल हमें जो डाक प्राप्त हुई उसमें एक पोस्टकार्ड पत्र देखकर हमें आश्चर्य सहित प्रसन्नता हुई, इसलिए कि डा. भारतीय जी ने 18 दिसम्बर, 2016 को हमें उक्त पत्र द्वारा स्मरण किया है। इस पत्र को देखकर जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन करना सम्भव नहीं है। प्रसन्नता इस कारण से हैं कि सम्प्रति भारतीय जी 88 वर्ष 5 माह के हो चुके हैं। इस अवस्था में उन्होंने हमें स्मरण किया और पत्र लिखा यह हमें उनका आशीर्वाद ही प्रतीत होता है। ईश्वर से हम उनके अच्छे स्वास्थ्य और दीघार्यु की कामना करते हैं। हमारा सौभाग्य है कि अनेक अवसरों पर हमें उनके दर्शन करने और प्रवचन सुनने का अवसर भी मिला है। जोधपुर में हमारी बड़ी बहिन की ससुराल होने के कारण हमारा सन् 1976 से वहां आना जाना है। अतः हम दो या तीन बार जोधपुर स्थित **‘नन्दनवन’** के उनके निवास पर भी गये हैं। एक बार उनके दर्शन हुए तो उन्होंने हमें अपना पुस्तकालय बहुत प्रेम से दिखाया था। हमें अगले दिन भोजन पर आने का निमंत्रण भी दिया था। उनकी सौजन्यता को हम जीवन में कभी भूल नहीं सकते। एक बार हम जोधपुर के स्मृति भवन गये जहां ऋषि दयानन्द अपने जोधपुर प्रवास में निवास करते थे और जहां सन् 1883 में उन्हें विष दिया गया था, वहां हमने देखा कि न्यास की कार्यकारिणी की बैठक चल रही है जिसमें डा. भारतीय भी विराजमान है। हमने बैठक की कार्यवाही को सुना और बैठक के समाप्त होने पर डा. भारतीय जी से मिले। सम्प्रति वहां एक भव्य एवं विशाल यज्ञशाला का निर्माण किया गया है। इस वर्ष मार्च, 2016 में अपनी टंकारा, रोजड़ एवं जोधपुर यात्रा में हमने इस भव्य यज्ञशाला को देखा है।

 वर्षों पूर्व डा. भारतीय जी देहरादून के आर्यसमाज धामावाला में कथा करने आये थे। उस अवसर पर हमने उनके सभी प्रवचनों को सुना था। उनके प्रवचन की एक बात हमें आज भी याद है। अपने प्रवचन में उन्होंने एक अंग्रेजी पब्लिक स्कूल की चर्चा कर उसके विषय में समाचार पत्र में छपे समाचार का विवरण देते हुए कहा था कि अंग्रेजी स्कूल के एक विद्यार्थी द्वारा हिन्दी बोल दिये जाने पर उसे दण्ड स्वरुप फाइन किया गया था। इसी को विषय बनाकर उस रात्रि को आपने अपना प्रवचन दिया था। एक बार गुरुकुल कांगड़ी और गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के 13 अप्रैल को बैसाखी के अवसर पर आप हमें वहां मिल गये थे। उसी वर्ष मार्च के महीने में पण्डित विश्वनाथ विद्यालंकार जी का देहावसान हुआ था। हमें वहां पं. विश्वश्रवा जी भी मिले थे जिनसे डा. भवानीालाल भारतीय जी के वार्तालाप को हमने सुना था। डा. भारतीय जी के साथ हम गुरुकुल कांगड़ी के उन दिनों सम्भवतः कुलाधिपति एवं आर्यनेता श्री वीरेन्द्र जी, जो उन दिनों आर्य प्रतिनिधि सभा, पजाब के प्रधान भी थे, उनके गुरुकुल स्थित निवास वा अतिथिगृह में उनसे मिले थे। इस अवसर पर वीरेन्द्र जी ने डा. भारतीय जी को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का इतिहास लिखने का प्रस्ताव किया था। सहमति भी हुई थी परन्तु बाद में क्या हुआ, ज्ञात नहीं हो सका। यह इतिहास लिखा नहीं गया। डा. भारतीय जी से जुड़ा यह भी संस्मरण है कि एक बार हम दोनों गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर से गंगा नदी के किनारे किनारे पैदल चल कर वहां से लगभग 2 किमी. वेद मन्दिर गीताश्रम, ज्वालापुर में वेदाचार्य डा. रामनाथ वेदालंकार जी के पास पहुंचे थे और परस्पर अनेक विषयों पर चर्चायें की थी। एक-दो वर्ष पूर्व हमारे सामने हमारे सरकारी सेवाकाल के दिनों के वरिष्ठ अधिकारी ने हमारे सम्मुख एक शंका रखी थी। इसके लिए हमने श्री अजय आर्य, विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली से डा. भारतीय का दूरभाष संख्या लेकर भारतीय जी से श्री गंगानगर, राजस्थान फोन पर बात की। भारतीय जी से हमने फोन पर उनका समाधान करने को कहा था। इसके साथ ही हमने अपने अधिकारी महोदय को डा. भारतीय जी का फोन नं. दे दिया था। बाद में मास्टर लक्ष्मण जी कृत ऋषि का जीवन चरित्र पढ़ते हुए हमें उस शंका का सटीक उत्तर मिल गया था जिसे हमने इमेल से उन्हें अवगत करा दिया। फोन पर बात करते हुए डा. भारतीय जी ने अपनी देहरादून संबंधी पुरानी अनेक स्मृतियों की चर्चा की थी।

यह भी लिख दें कि वर्ष 1995 में **सरिता समूह की एक मासिक पत्रिका ‘सरस सलिल’** ने अपने दो अंकों में एक लेख **‘आर्य समाज असफल क्यों हुआ?’** प्रकाशित किया था। हमें आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश के यशस्वी मंत्री, आर्यनेता और हमारे मित्र श्री धर्मेन्द्र सिंह आर्य ने इसका प्रतिवाद करने को कहा। हम पत्रिका के दोनों अंकों को प्राप्त कर डा. रामनाथ वेदालंकार जी के पास पहुंचे थे। आपने वह लेख डा. भवानीलाल भारतीय जी को प्रतिवाद हेतु भेज दिये थे। कुछ ही दिनों बाद हमें डा. भवानीलाल जी का एक विस्तृत लेख आर्यजगत के अंक में पढ़ने को मिला। यह लेख आर्यजगत के मध्य के दो पृष्ठों पर प्रकाशित हुआ था जिसका शीर्षक था **‘आर्यसमाज विफल कहां हुआ?’** इस लेख को पूरा पढ़ने के बाद हमें अतीव प्रसन्नता हुई थी। डा. भवानीलाल भारतीय जी ने बहुत ही योग्यतापूर्वक इस लेख को लिखा था।

डा. भवानीलाल भारतीय जी का कल प्राप्त पत्र हम पाठको के ज्ञानार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं:

ओ३म्

3/5 शंकर कालोनी, श्री मगानगर/18.9.16

प्रिय बंधु नमस्ते।

लाला लाजपतराय कृत पं. गुरुदत्त के जीवन चरित को होश्यारपुर स्थित पंजाब विश्व विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से प्राप्त कर मैंने हिन्दी में अनुदित किया था। यह पुस्तक 3 बार प्रकाशित हो चुकी है। 1990 में आर्य प्रकाशन दिल्ली, 2. आर्य प्रकाशन मण्डल, दरयागंज दिल्ली 3. गोविन्दराम हासानन्द ने सम्पूर्ण लाला लाजपतराय ग्रंथावली को मुझ से सम्पादित कर कई खण्डों में प्रकाशित किया। इसमें भी यह जीवनी छपी है।

आपको जानकारी के लिए।

भवदीयः

ह./- भवानीलाल भारतीय

इसी क्रम में यह भी बता दें कि आर्य प्रकाशन, दिल्ली द्वारा सन् 1990 में प्रकाशित प्रथम संस्करण हमारे पास है जिसे सितम्बर, 2013 में हमने पढ़ा है। इस पुस्तक का शीर्षक है **‘पं. गुरुदत्त विद्यार्थी: जीवन और कार्य’ (लाला जालपतराय की प्रथम अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद)।** यह पुस्तक लाला जी ने पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जी की 19 मार्च, सन् 1890 को मृत्यु के एक वर्ष पश्चात् लिखी थी। लाला जी पं. गुरुदत्त जी से एक वर्ष छोटे थे, अतः यह पुस्तक उन्होंने अपनी आयु के 26 वें वर्ष में लिखी थी। इस पुस्तक में **‘अनुवादक के वक्तव्य’** में डा. भारतीय जी ने एक तथ्य यह भी दिया है कि **‘महात्मा मुन्शीराम (बाद में स्वामी श्रद्धानन्द कहलाये) जैसी एक अन्य हस्ती को आर्यसमाज में लाने का श्रेय भी इसी महापुरुष को है।’** इसके अतिरिक्त हमें पं. गुरुदत्त जी के साथी श्री जीवनदास पेंशन लिखित उनकी संक्षिप्त जीवनी को पढ़ने का भी अवसर मिला हे। डा. रामप्रकाश जी कुरुक्षेत्र ने भी पं. गुरुदत्त जी की एक खोजपूर्ण जीवनी लिखी है जिसका प्रकाशन ब्रह्मचारी नन्द किशोर जी ने सन् 1990 में अनीता प्रकाशन, पानीपत से किया है। आर्य विद्वान प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने भी **‘मुनिवर पं. गुरुदत्त विद्यार्थी’** नाम से पण्डित जी की खोजपूर्ण जीवनी लिखी है। इसके दो संस्करण प्रकाशित हुए हैं। दोनो हमारे पास हैं। हमारा सौभाग्य है कि हमने इन्हें पढ़ाना है। पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जी के लेखों व पुस्तकों का एक संग्रह **‘गुरुदत्त लेखावली’** के नाम से **‘अनीता आर्ष प्रकाशन’** पानीपत से ब्र. नन्दकिशोर एम.ए. विद्यावाचस्पति जी ने सन् 1990-92 में प्रकाशित कराया था। इस पुस्तक का उपोद्घात श्री सन्तराम, बी.ए. का लिखा हुआ है। इसके सम्पादन आदि का कार्य पं. भगवदत्त जी द्वारा सम्पन्न किया गया। इसका पहला संस्करण अक्तूबर, 1897 में प्रकाशित हुआ था। इस अवसर पर श्री जीवनदास पेन्शनर, उप-प्रधान लाहौर आर्यसमाज द्वारा लिखित भूमिका को भी इसमें दिया गया। इस ग्रन्थावली को हमनें अक्तूबर, 2013 में पढ़ा। इसमें कुछ संस्थानों पर अनुवाद कुछ जटिल है जिसे पाठकों को समझने में कठिनाई होती है। श्री भावेश मेरजा जी व हमनें श्री प्रभाकरदेव आर्य, प्रकाशक, श्रीघूड़मल प्रह्लादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डोन सिटी से इसका श्री आर्यमुनि जी से पुनः हिन्दी अनुवाद कराकर प्रकाशित करने हेतु निवेदन किया था। हमारा अनुमान है कि यह अनुवाद हो गया है परन्तु आर्थिक कारणों से इसका प्रकाशन रुका हुआ है। हम पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जी के भक्तों से निवेदन करते हैं कि वह इसके प्रकाशन में अपना योगदान करें जिससे पं. गुरुदत्त जी के ग्रन्थों को पाठकों को समझने में सहायता हो। यह भी बता दें कि अंग्रेजी में पं. गुरुदत्त लेखावली का प्रकाशन डा. प्रो. रामप्रकाश जी के द्वारा **‘Works of Pt. Guru Datta Vidyarthi’** नाम से सन् 1998 में हुआ। यह प्रकाशन स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती जी ने **‘समर्पण शोध संस्थान’** गाजियाबाद से किया था। वर्तमान में यह पुस्तक **‘विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली’** ये उपलब्ध हो रही थी। अब पता नहीं कि यह उपलब्ध है अथवा समाप्त हो चुकी है। भविष्य में हिन्दी व अंग्रेजी की ग्रन्थावली कभी प्रकाशित होंगीं या नहीं, कह नहीं सकते क्योंकि उन्हीं पुस्तकों के प्रकाशन की सम्भावना होती है जो शीघ्रातिशीघ्र बिक जायें। सभाओं ने तो प्रकाशन का कार्य काफी समय से छोड़ रखा है। यदा-कदा कोई छुट पुट प्रकाशन ही उनके द्वारा हो पाता है।

डा. भारतीय जी का दिनांक 18 अक्तूबर 2016 का पत्र प्राप्त कर हमारी कुछ स्मृतियां ताजा हो गई जिन्हें हम अपने मित्रों से साझा कर रहे हैं। फेस बुक पर कुछ अन्य चित्र भी प्रस्तुत कर रहे हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**